निकाचित कर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जब प्राणी अपने मन, वचन और काय से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है, तब चारों ओर से कर्मयोग्य पुद्गल परमाणुओं का आकर्षण होता है। वही कर्म है। कर्म को माया, अविद्या, क्लेश, अदृष्ट, वासना और अपूर्व आदि नामों से भी जाना जाता है। अनन्त पुद्गलों से परिपूर्ण लोक में कर्मरूप से परिणत होने योग्य नियत पुद्गल जीव परिणाम के अनुसार बन्ध को प्राप्त होकर ज्ञान दर्शन के घातक पुद्गलों को कर्म कहते हैं। एक देश से दूसरे देश की प्राप्ति में कारणभूत पदार्थ के परिस्पन्दात्मक परिणाम का नाम कर्म है। आत्मा के द्वारा अपने अध्यवसाय से आकृष्ट शुभ–अशुभ पुद्गल संचित रहते हैं। वे पुद्गल आत्म प्रवृत्ति अर्थात् कर्म के द्वारा आकृष्ट होते हैं, इसलिए वे कर्म नाम से अभिहित होते हैं। उनका आधारभूत शरीर भी कार्मण शरीर के नाम से जाना जाता है।

मुख्यतः कर्म का अर्थ प्रवृत्ति हैं। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध क्रिया के द्वारा होता है। जब तक आत्मा में रागद्वेष जनित प्रकम्पन विद्यमान है, तब तक उसका कर्म परमाणुओं के साथ सम्बन्ध होता रहता है। इसलिए कर्मवाद क्रियावाद का उपजीवी है। कर्म त्रैकालिक है। क्रिया है, इसलिए उसको करने से कर्मबंध होता है। कर्मबंध का परिणाम है– जीवों का दिशाओं और अनुदिशाओं में अनुसंचरण। क्रिया कर्म पुद्गलों का आस्रवण करती है इसलिए उसका दूसरा नाम आस्रव है। आस्रव शब्द बन्धन या दुःख के कारण रूप में गृहीत हुआ है। कर्म को उपाधि कहा गया है। उपाधि शब्द दुःख, पीड़ा और बन्धन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जब कर्म आत्मा के साथ बधते हैं तो उनका फल भी भुगतना पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि अपना किया गया कर्म फल दिये बिना विनष्ट नहीं होता।

कर्म की विभिन्न अवस्थाएं हैं। मुख्यरूप से इन्हें ग्यारह भेदों में विभक्त किया गया है। बन्ध, सत्ता, उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण, उदय, उदीरणा, उपशमन, निधत्ति, निकाचित और

आबाधाकाल। आत्मा के साथ कर्मपरमाणुओं का सम्बन्ध होना, क्षीर नीरवत् एकमेक हो जाना बंध है। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से बन्ध के चार प्रकार हैं। आबद्ध कर्म अपना फल प्रदान कर जब तक आत्मा से पृथक् नहीं हो जाते तब तक वे आत्मा से ही सम्बद्ध रहते हैं। इसे सत्ता कहा गया है। स्थिति बन्ध और अनुभागबन्ध के बढ़ने को उद्वर्तना कहते हैं। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध के घटने को अपवर्तना कहते हैं। उद्वर्तना और अपवर्तना के कारण कोई कर्म शीघ्र फल देता है और कोई देर में, किसी का फल तीव्र होता है और किसी का मन्द। एक प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्मपरमाणुओं की स्थिति आदि के रूप में परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया को संक्रमण कहते हैं। कर्म का फलदान उदय है। यदि कर्म फलदेकर निर्जीर्ण हों तो वह फलोदय है और फल दिये बिना ही उदय में आकर नष्ट हो जाय तो प्रदेशोदय है। नियत समय के पूर्व कर्म का उदय में आना उदीरणा है। जैसे समय से पूर्व ही आम आदि फल पकाये जाते हैं वैसे ही साधना से आबद्ध कर्म का नियत समय से पूर्व भोग कर क्षय किया जा सकता है। सामान्यतः यह नियम है कि जिस कर्म का उदय होता है उसी के सजातीय कर्म की उदीरणा होती है।

कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उदय में आने के लिए उन्हें अक्षम बना देना उपशम है। जिसमें कर्मों का उदय और संक्रमण न हो सके, किन्तु उद्वर्तन–अपवर्तन की संभावना हो वह निधत्ति है। जिसमें उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण एवं उदीरणा इन चारों अवस्थाओं का अभाव हो, वह निकाचित है। अर्थात् आत्मा में जिस रूप से कर्म बंधा है उसी रूप में भोगे बिना उसकी निर्जरा नहीं होती। कर्म बधंने के पश्चात् जब तक फल न दे ऐसी अवस्था को आबाधाकाल कहते हैं। जीवन में कर्मवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में दिखायी पड़ने वाली विभिन्नता का कारण कर्म ही है। सब प्राणी अपने कर्मों के अनुसार पृथक्–पृथक् योनियां प्राप्त करते हैं। कर्मों की अधीनता के कारण अव्यक्त दुःख से दुखी प्राणी जन्म जरा और मरण से भयभीत होकर संसार–चक्र में भटकते रहते हैं। प्राणियों के शुभाशुभकर्म ही संसार भ्रमण के कारण हैं।

कर्मवाद का यह सिद्धान्त है कि जो प्राणी जैसा कर्म करता है उसको उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। कर्मों का फल भोगे बिना संसार से मुक्ति नहीं मिल सकती। संसार में आवागमन रोकने के लिये कर्मबीज को नष्ट करना बहुत आवश्यक है। जिसने अपने कर्मों को

नष्ट कर लिया है उसका संसार में भ्रमण रुक जाता है। जिस प्रकार दग्धबीजों में से पुनः अंकुर फूटने की शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार कर्मरूपी बीजों के नष्ट हो जाने पर उनमें भवरूपी अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती।

बन्ध और मोक्ष प्राणियों के अपने अधीन है। जैनागमों में कर्मबीज के नष्ट करने की बात कही गयी है। गीता में भी कहा गया है कि जिस व्यक्ति के सारे कर्म कामना और संकल्प से रहित होते हैं तथा ज्ञानाग्नि से समस्त संचित कर्म जल जाते हैं, ऐसे व्यक्ति को ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं। जब कर्म बीज नष्ट हो जाते हैं तो आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर लोकाग्र में स्थित हो जाता है। इस प्रकार प्राणियों के उत्थान और पतन में कर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। निकाचित कर्म को बिना भोगे मुक्ति नहीं मिलती है।